

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के आर्थिक मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. कुलदीप कुमार सेहगल

एसोसिएट प्रोफेसर

माता सुन्दरी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)

सारांश

अभिनव शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रचार और विस्तार पर विशेष बल दिया जा रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञानराशि का अमूल्य रत्न है, जिसके आलोक ने न केवल भारतवर्ष को अपितु समग्र विश्व को आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक एवं उत्कृष्ट अर्थशास्त्रीय मूल्य भी प्रदान किए हैं।

वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा, जो वेद प्रतिपादित आदर्शों और मूल्यों से अनुप्राणित है। उन वेदों की व्याख्या करने वाले महाभारत इत्यादि ग्रंथों में जीवन की समग्रता को केवल धर्म और मोक्ष तक ही सीमित न रखते हुए चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सभी की उपलब्धि को आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है।

“धर्म अर्थ च कामे च मोक्षे च भरतर्षभः।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥”¹

ऐसे में श्रीमद्भगवद्गीता, जो कि महाभारत के भीष्म पर्व का ही एक अंश है। उसमें भला किस प्रकार जीवन की समग्रता का प्रतीक समझे जाने वाले अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों की पूरी तरह उपेक्षा हो सकती है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों के दमन में जीवन की समग्रता को नहीं देखती, अपितु इनके संतुलन और सुनियोजन में ही भगवद्गीता का निहितार्थ उपलब्ध होता है।



आधुनिक प्रसंगों में भी जब भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास करना ही शिक्षा और राष्ट्रनीति का लक्ष्य निर्धारित हो चुका है, तब ऐसी स्थिति में भगवद्गीता जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ की प्रासंगिकता को और अधिक समृद्ध करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है कि गीता की व्याख्या करते समय केवल धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों की ही नहीं, बल्कि उसमें प्रतिपादित जीवन के आर्थिक पक्ष और संतुलित भौतिक विकास पर आधारित संदेशों को भी अत्यंत सावधानी के साथ प्रचारित किया जाए।

इसी उपर्युक्त महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे द्वारा गीता पर आधारित अर्थशास्त्रीय मूल्यों को आधार बनाकर लिखे गए यत् किंचित शोध साहित्य का अवलोकन और विषयान्वेषण उपलब्ध साधनों के आधार पर किया गया है। शोध गंगा (यूजीसी) तथा (गूगल स्कॉलर) इत्यादि आभासी पटलों पर रिसर्च गेट जैसे अंतर्जालीय स्रोतों के साथ-साथ विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुस्तकालयों तथा प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं से संकलित विषय सामग्री के आधार पर

यह ज्ञात हुआ है कि गीता में प्रबंधन, व्यावसायिक नैतिकता और नेतृत्व आदि विषयों पर उपलब्ध शोध सामग्री यद्यपि आधुनिक संदर्भ में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है तथापि इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र के अनेक ऐसे पक्ष हैं जिनका मूल्यांकन आवश्यक समझा जा रहा है। जैसे श्रम विभाजन, कौशल संवर्धन, स्थायी विकास, पर्यावरण संरक्षण, भ्रष्टाचार और अपराधों से मुक्त आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, तनावरहित और मानसिक स्वास्थ्य से युक्त व्यावसायिक परिस्थितियों की स्थापना इत्यादि।

भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार अर्थ और काम पुरुषार्थ केवल सांसारिक या भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं हैं, अपितु वे आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर साधक मनुष्यों के लिए भी अनिवार्य माने गए हैं। भौतिक संसाधनों का संतुलित, मर्यादित एवं धर्मसम्मत उपयोग ही व्यक्ति को आत्मिक उन्नति की ओर ले जाता है – यह गीता का मूल संदेश है।

इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित आर्थिक मूल्यों की सम्यक समीक्षा करना है, साथ ही यह स्पष्ट करना है कि अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों तथा भौतिक संसाधनों की आवश्यकता साधक मनुष्यों के लिए भी क्यों और कैसे अपरिहार्य है। ऐसा विश्वास है कि यह विवेचन आधुनिक प्रबंधन दृष्टिकोण और पारंपरिक आध्यात्मिक चेतना के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होगा।



शोध पत्र :

ज्ञानदीपोऽक्षयो गीता संघर्षे सौख्यसाधिका।
युद्धभूमावपि प्रोक्ता समराणां सुशंकरी॥²

यद्यपि गीता युद्ध की पृष्ठभूमि में कही गई है, लेकिन यह युद्धों का और मानसिक द्वंद्वों का शमन करने वाली है, शांति प्रदान करने वाली है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्म पर्व का हिस्सा है। यह अध्याय 25 से 42 (अथवा 23 से 40) के मध्य श्री कृष्ण और अर्जुन का संवाद है। महर्षि वेदव्यास ने इसे एक कालजयी और अलौकिक कृति कहा है। इसे 'भगवद्गीता' यानी (भगवान द्वारा गाया हुआ संगीत) माना गया है।

सम्पूर्ण मानव जाति की कोई ऐसी समस्या या द्वंद्व नहीं है जिसका समाधान श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा न किया जा सके। गीता केवल अध्यात्म या मोक्ष का विमर्श ही नहीं करती अपितु यह मानव के 'आधिभौतिक' यानी सांसारिक और आर्थिक पक्ष की भी चर्चा करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं और गीता उन सभी उपनिषदों और वेदों का सार तत्व है। इस पावन पुनीत परिचर्चा को आर्थिक प्रबन्धन का स्वरूप प्रदान करते हुए इसे भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिनिधि ग्रंथ स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ धर्म अध्यात्म और मोक्ष की उपयोगी साधनाओं को केंद्र में रखते हुए भी जीवन के आधिभौतिक पक्ष की कदापि उपेक्षा नहीं की गई है। भगवद्गीता की प्रशंसा में कहा गया है -

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥³

भगवद्गीता समस्त शास्त्रों के मर्म को तथा जीवन के समस्त पक्षों को भी स्वयं में समेटे हुए है जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा के अग्रदूत के रूप में समझा जाता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।⁴

इसके द्वारा मानव मात्र की आधिभौतिक समृद्धि और आर्थिक मूल्यों के अभ्युदय की संभावनाओं का अन्वेषण किया जाना एक उचित और सार्थक प्रयास हो सकता है।



गीता के संदर्भ में युद्ध और अर्थशास्त्र

इस तथ्य का निरंतर विश्लेषण किया जाता रहना अनिवार्य है कि युद्ध की पृष्ठभूमि में कही गई भी भगवद्गीता वास्तव में न तो किसी युद्ध को प्रेरित करती है और न ही वह किसी शोषण करने वाले अन्यायपूर्ण क्रूर कर्म और दमन का समर्थन करती है।

अनेक बार यह भी देखने को मिला है कि कुछ दुराग्रही और भगवद्गीता के संबंध में अपूर्ण ज्ञान रखने वाले और भारतीय संस्कृति की आत्मा को न समझकर उसका तिरस्कार करने वाले, देश और विदेश के तथाकथित विद्वान भगवद्गीता पर युद्ध को प्रोत्साहित करने का अनुचित अभियोग लगाते रहे हैं।

इस संबंध में दिसंबर 2011 में रशिया (Russia) के साइबेरिया क्षेत्र के एक शहर तोम्स्क (Tomsk) की एक अदालत में इस्कॉन (ISKCON) संस्था द्वारा प्रकाशित एक महत्वपूर्ण भाष्य ('भगवद्गीता यथावत्'), के रूसी भाषा में अनुवाद पर जो युद्ध को प्रोत्साहित करने का अनुचित अभियोग न्यायालय में अनावश्यक रूप में चलाया गया, वह इसका जीवंत प्रमाण है कि भगवद्गीता जैसे परम आध्यात्मिक और भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ की किसी भी काल में षड्यंत्रों द्वारा की जाने वाली अनावश्यक मानहानि से उसकी रक्षा के उपाय निरंतर किए जाते रहने आवश्यक हैं। इस संबंध में भारत के निरंतर प्रयासों द्वारा रूसी न्यायालय ने इस प्रकार के कृत्रिम अभियोग को निरस्त कर दिया। और यह इस बात का प्रमाण है कि भगवद्गीता किसी प्रकार से भी साम्प्रदायिक उन्माद और केवल अपने आर्थिक लाभ, सुख-सुविधाओं और स्वार्थ की पूर्ति के लिए किए जाने वाले युद्ध और संघर्ष को प्रेरित नहीं करती।

अर्जुन स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि वे शत्रुओं द्वारा निःशस्त्र करके मारे जाने पर भी और तीनों लोकों का राज्य ठुकरा कर भी केवल भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह कर लेना श्रेष्ठ समझेंगे, किंतु कदापि अपने गुरुजनों, अपने संबंधियों और अपने प्रियजनों पर शस्त्र नहीं उठाएंगे और एक बड़े जनसंहार का कारण नहीं बनेंगे।

गुरुहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामास्तु गुरुनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥⁵
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥⁶



गीता में भगवान ने अर्जुन को जिस युद्ध की प्रेरणा दी है, वह एक योद्धा का पवित्र कर्तव्य है जहाँ उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए और न्याय की स्थापना के लिए शत्रुओं के विरुद्ध खड़े होना है।

जहाँ लाभ-हानि, जय-पराजय इत्यादि का भी विचार नहीं किया गया है, केवल स्वधर्म पालन के लिए इस युद्ध को उचित माना गया है।

**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥⁷**

इसके ठीक विपरीत आधुनिक काल में विभिन्न राष्ट्र अलग-अलग व्यक्तिगत कारणों और आर्थिक लाभों की इच्छा से दूसरे शक्तिहीन देशों पर जिस प्रकार का अनुचित संघर्ष, आर्थिक संकट तथा शस्त्रों की स्पर्धा को बढ़ावा देने वाले युद्धों को आरोपित कर रहे हैं और उसे केवल अपने आर्थिक लाभ के लिए अथवा केवल अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए अनुचित रूप में महिमामंडित करते हुए वर्षों-वर्षों तक निरंतर ढोये जा रहे हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा और भगवद्गीता इस प्रकार के लालचपूर्ण संघर्ष का कदापि समर्थन नहीं करती।

भौतिक जगत की उपादेयता का प्रतिपादन:

भगवद्गीता में आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं के आकर्षण के परिहार को उचित माना गया है। किन्तु फिर भी सामान्य मनुष्य अथवा यहाँ तक कि साधक व्यक्तियों के लिए भी भौतिक जगत की पूर्ण रूप से उपेक्षा का कहीं भी विधान नहीं है।

गीता के विभिन्न प्रसंगों में भगवान ने भौतिक जगत के अस्तित्व की वास्तविकता और उसकी उपादेयता को सुनिश्चित करने वाले बहुत से प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। विभिन्न संदर्भों में बहुत-सी भौतिक सुविधाओं और उनके साधनों की प्राप्ति, उनकी सुरक्षा और उनके सदुपयोग के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के विभिन्न उपायों का पर्याप्त कथन गीता में किया गया है, जो कि आर्थिक मूल्यों की अभिवृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है।



गीता के अष्टम अध्याय में अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ, कर्म तथा अध्यात्म की अलग-अलग प्रकार से व्याख्या करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि गीता में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक जगत और उसके संतुलित विकास पर बल दिया गया है, न कि भौतिक जगत की उपेक्षा की गई है।⁸

भगवान द्वारा एकादश अध्याय में अपने विश्वरूप दर्शन में समस्त चराचर जगत को अपना स्वरूप ही बता देना तथा अपनी विभूतियों के अलग-अलग प्रकार से किए गए कथन में जगत की विभिन्न वस्तुओं और पदार्थों को साधक के लिए भगवत्स्वरूप मान लेने की प्रेरणा देना भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि भगवद्गीता में भौतिक मूल्यों की साधक व्यक्तियों तक के लिए भी उपेक्षा नहीं की गई है।⁹

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥¹⁰

हे अर्जुन! मैं सभी प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ; मैं ही सभी भूतों का आदि, मध्य और अंत हूँ।

स्थावराणां हिमालयः¹¹

स्थिर वस्तुओं (पर्वतों) में मैं हिमालय हूँ।

स्रोतसामस्मि जाह्नवी¹²

जल-प्रवाहों में मैं गंगा (जाह्नवी) हूँ।

गीता के सप्तम अध्याय में भगवान ने अपरा प्रकृति के अंतर्गत भौतिक जगत के संपूर्ण साधनों, प्रकृति एवं पर्यावरण से जुड़े हुए विभिन्न तत्वों को महत्त्वपूर्ण और उपादेय बताया है। यहाँ पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, यहाँ तक कि मन, बुद्धि और अहंकार इत्यादि को भी अपनी अपरा प्रकृति के अंतर्गत मानते हुए इनके संतुलित विकास और उपयोग पर बल दिया है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥¹³

आधुनिक काल में सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देते हुए भी पर्यावरण के संरक्षण को सुनिश्चित करने की प्रेरणा भगवद्गीता के उन सन्दर्भों से प्राप्त हो जाती है जहाँ प्रकृति में परमेश्वर को देखने की संकल्पना विद्यमान है। वर्तमान आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करने के लिए सांस्कृतिक पर्यटन के साथ-साथ स्थायी विकास (सस्टेनेबल डेवलपमेंट) पर अधिक बल दिया जा रहा है किंतु पर्यावरण के संरक्षण और



प्रकृति के प्रति प्रेम की स्थापना के अभाव में ये दोनों ही लक्ष्य अधूरे से प्रतीत होते हैं। भगवद्गीता कण-कण में ईश्वरीय समर्पण को प्रोत्साहित करके प्रकृति प्रेम और पर्यावरण संरक्षण को सहज रूप में ही मानव के संस्कारों में स्थापित करती है। इसी प्रकार गीता के विभिन्न प्रकरणों में भगवान ने कहीं तो अपने चार प्रकार के भक्तों में अर्थार्थी साधकों को भी महत्त्व दिया है और कहीं अपने अनन्य भक्तों के योगक्षेम का स्वयं वहन करने का उद्घोष किया है।

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥¹⁴**

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थलों पर अलग-अलग देवताओं की उपासना द्वारा साधकों की भौतिक कामनाओं की पूर्ति और उनकी आवश्यकताओं की प्राप्ति का संकेत भी प्राप्त होता है।

अध्याय तीन में भगवान ने सृष्टि-चक्र को निरंतर बनाए रखने के लिए तथा पर्यावरण, वर्षा आदि की निरंतर अभिवृद्धि के लिए यज्ञ-कर्म को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। यहाँ तक कि संसार की रक्षा के लिए स्वयं निष्काम होने पर भी भगवान द्वारा कर्मों के किए जाने का संकेत भी किया गया है।

अर्थ और काम का संतुलन:

स्थूल दृष्टि से देखने पर श्रीमद्भगवद्गीता अध्यात्म, धर्म और मोक्ष का प्रतिपादन करते हुए जात होती है। यह निश्चय ही सत्य है कि गीता के कुछ प्रसंगों में जीवन के अर्थ और काम नामक पक्षों के आकर्षण को मर्यादित एवं संतुलित करने का संदेश प्रदान किया गया है।

गीता के तीसरे अध्याय के कुछ अंशों में काम, क्रोध तथा लोभ को पतन का अधोमार्ग स्वीकार करते हुए, रजोगुण से उत्पन्न हुए काम को पाप एवं अपराध का कारण बताया गया है तथा उसके दमन का निर्देश भी प्राप्त होता है। किंतु वास्तव में भगवद्गीता के कुछ दूसरे प्रसंगों में काम नामक पुरुषार्थ को मनुष्य के भौतिक लक्ष्य के रूप में भी अनिवार्य रूप से स्थापित किया गया है। भगवान ने काम तत्व को धर्म के अनुकूल प्रयोग में लाते हुए प्रजा की उत्पत्ति के व्यवहार के रूप में इसे आवश्यक और उचित माना है। इसी प्रकार विभिन्न संदर्भों में मनुष्य द्वारा देवताओं की उपासना करते हुए विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति और भौतिक लक्ष्यों की सिद्धि को भी मान्यता प्रदान की है।

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ (भगवद्गीता 7.11)



काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥¹⁵

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥¹⁶

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥¹⁷

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥¹⁸

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥¹⁹

इसी प्रकार गीता के कुछ प्रसंगों जैसे चतुर्थ अध्याय के अंशों में कहीं द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ को अधिक श्रेष्ठ बता दिया गया है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥²⁰

किंतु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह भी ज्ञात हो जाता है कि गीता के ये सभी प्रसंग आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए अर्थ और काम का केवल संतुलन करने के लिए व्यवस्थित किए गए हैं, न कि इनके द्वारा जीवन के आर्थिक मूल्यों और भौतिक संसाधनों का तिरस्कार कहीं भी दिखाई देता है।

गीता के अठारहवें अध्याय में धनोपार्जन के संबंध में विभिन्न प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है – अध्यापन कर्म, रक्षा कर्म, वाणिज्य कर्म, कृषि कर्म, पशुपालन कर्म तथा श्रम आधारित सेवा कर्म इत्यादि।

ये मुख्यतः श्लोक 18.41-18.44 में आते हैं।²¹

वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ और वेदों तथा पुराणों के सार तत्व को प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में भी जीवन की समग्रता और संपूर्णता के लक्ष्य को ही सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। जीवन की संपूर्णता व्यक्ति के आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में निहित है।



ऐसे में व्यक्ति के आधिभौतिक विकास का प्रतिनिधि बन सकने वाले अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों की भी गीता में कहीं भी उपेक्षा प्राप्त नहीं होती है।

किन्तु मनुष्य का अमर्यादित भौतिक आकर्षण उसके आध्यात्मिक उत्कर्ष में बाधक सिद्ध न हो, इसी के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा और श्रीमद्भगवद्गीता में अर्थ और काम को मनुष्य के धर्म और मोक्ष की सिद्धि में सहायक और साधक तत्व के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

श्रम विभाजन एवं कौशल संवर्धन:

भगवद्गीता में स्वस्थ भारतीय वैदिक परंपरा का समर्थन करते हुए ही श्रम विभाजन के संबंध में महत्वपूर्ण सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। वस्तुतः भारतीय परंपरा और प्रामाणिक शास्त्रीय व्यवस्था में वर्णगत एवं जातिगत भेदों को सामाजिक अस्पृश्यता के आधार पर व्यवस्थित नहीं किया गया है, जबकि इसका संबंध व्यक्ति और उसके परिवार से जुड़े हुए श्रम आधारित कौशल के साथ है, जो कि गुणवत्ता की अधिकाधिक संभावनाओं पर आधारित मूल्यों पर केंद्रित है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ गीता 4.13²²

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।

ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥²³

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ गीता 5.18²⁴

सच्चा ज्ञानी ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और श्वपाक (चाण्डाल) सभी में समान भाव रखता है।

गीता का स्पष्ट मत है कि अपने गुणवत्ता पर आधारित श्रम का अनुपालन करते हुए तथा उस आधार पर अपनी वृत्ति का लाभ लेते हुए समस्त मनुष्य, समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण में रत रहते हुए आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति भी कर सकते हैं।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (गीता 18.46)²⁵



जिस परमात्मा से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, मनुष्य अपने स्वधर्म (अपने कर्म) के द्वारा उसी की उपासना करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स ने जिस वर्गविहीन मानव समाज की परिकल्पना अपने ग्रंथों में प्रस्तुत की थी, भगवद्गीता में बहुत पहले ही उसे आध्यात्मिक समाजवाद के रूप में स्थापित कर दिया था। किन्तु यह महत्वपूर्ण है कि जहाँ कार्ल मार्क्स वर्गविहीन समाज की अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए भी मानव समाज को श्रमिक और पूँजीपति इन दो श्रेणियों में आर्थिक दृष्टि से विभाजित कर चुके थे, वहीं भगवद्गीता में आर्थिक दृष्टि से केवल गुणवत्ता और कौशल संवर्धन पर आधारित श्रम विभाजन के सिद्धांत की ही पुष्टि की गई है, जिसमें पूँजीपति वर्ग के रूप में किसी मुख्य श्रेणी या वर्ग को स्वीकार नहीं किया गया है, जो समाज का शोषण कर सकता है। स्वाभाविक गुणवत्ता और कौशल पर आधारित रहने वाले सभी प्रकार के श्रम समाज, राष्ट्र और अध्यात्म और परमतत्व की सेवा में अपना समान महत्व रखते हैं। इनमें से कोई भी शोषक अथवा शोषित वर्ग नहीं है।

आधुनिक काल में भी विश्व के सभी भागों में गुणवत्ता पर आधारित कुछ स्वाभाविक श्रम और कौशलों को केंद्र में रखकर अनेक आर्थिक श्रेणियों का निर्माण हुआ है, जैसे चिकित्सक, आभियांत्रिक (इंजीनियर), सुरक्षाकर्मी, प्राध्यापक, शाक-फल विक्रेता, शिल्पी, श्रमिक, स्वच्छताकर्मी, वाहन चालक, धनानुदाता, बैंक्स में फाइनेंसर्स, कलाकार, वैज्ञानिक इत्यादि। आज ये सभी आर्थिक श्रेणियाँ हैं, जिनका निर्माण उनके गुणवत्ता आधारित श्रम और कौशल के आधार पर हुआ, न कि अस्पृश्यता और शोषण पर आधारित किसी व्यवस्था के आधार पर। इस व्यवस्था को आधार बनाकर इन्हें स्वीकार किया जा सकता है। अतः यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भगवद्गीता कार्ल मार्क्स के वर्गविहीन समाज की अपेक्षा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना प्रस्तुत करती है, जहाँ शोषण और भेदभाव से रहित श्रम और कौशल आधारित अर्थात् स्वाभाविक गुणों पर केंद्रित श्रम और परस्पर स्वस्थ सहयोग करने वाली और आर्थिक समृद्धि को निरंतर बढ़ाने वाली श्रेणियों की उपादेयता सदा बनी रहें।²⁶

इस विषय में भारतीय परंपरा को आधार बनाकर एक महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया जा सकता है कि जब जनसंख्या के अनुपात में आज वर्तमान परिस्थितियों में सभी सरकारों के पास रोजगार अथवा किसी एक विशेष क्षेत्र में वृत्ति लाभ या नौकरी के अवसर बहुत सीमित हैं, तब केवल आरक्षण के भरोसे ही संपूर्ण समाज को आर्थिक न्याय दिया जा पाना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर स्वरोजगार के लिए कौशल संवर्धन की विशेष आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर कौशल विकास के लिए भी स्वाभाविक गुणों और योग्यताओं की पहचान किए जाने की भी महत्वपूर्ण उपादेयता है।



भगवद्गीता के विभिन्न संदर्भों में ऐसे बहुत से सूत्र प्राप्त होते हैं, जो आर्थिक प्रबंधन को प्रोत्साहित करते हैं एवं जिनके द्वारा कौशल संवर्धन का महत्वपूर्ण व्यक्तिगत और सामुदायिक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

गीता प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत केवल आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखता है। व्यक्तिगत और सामुदायिक कौशल का संवर्धन करने में इस निष्काम कर्मयोग का महत्वपूर्ण अवदान देखा जा सकता है।

कोई भी व्यवसाय, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामुदायिक, उसके लक्ष्यों की सिद्धि और लाभ की प्राप्ति तभी संभव है जब उसमें संलग्न कर्मचारी बिना किसी निराशा, पीड़ा और आलस्य के अपने कार्य का निष्ठापूर्वक संपादन करते हों।

गीता का निष्काम कर्मयोग कर्मचारियों को समर्पण, और निष्ठा से युक्त होकर अथक परिश्रम करने की प्रेरणा देता है। साथ ही वह उन्हें विपरीत परिणाम होने के भय से मुक्त रहने तथा निराशापूर्ण व्यवहार से बचने के मानसिक स्तर को भी प्रदान करता है।²⁷

इसके अतिरिक्त भगवद्गीता ऐसी आचार संहिता का संदेश भी देती है, जो व्यापारिक संगठनों के प्रमुख संचालकों के लिए आदर्श मानी जा सकती है। गीता का स्पष्ट कथन है कि श्रेष्ठ व्यक्ति जिस प्रकार के मानदंड को स्थापित करते हैं, उनका अनुकरण करने वाले भी उसी मानदंड पर चलते हैं।²⁸

आर्थिक संस्थानों के प्रमुख संचालकगण भी जिस प्रकार के कार्य-अनुशासन, समय की मर्यादा एवं कार्य कुशलता का प्रदर्शन करेंगे, उनके सहकर्मी एवं अन्य कर्मचारी भी इसी मर्यादा का पालन करते हुए संस्था को और राष्ट्र को भी श्रेष्ठ आर्थिक लाभ प्राप्त कराने का सामर्थ्य रख सकेंगे।

यह एक प्राणिशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी कार्य अथवा रोजगार में कुशलता की स्थापना के लिए उस कौशल अथवा योग्यता का मनुष्य के स्वाभाविक गुण के रूप में प्रकट होना आवश्यक अथवा अनिवार्य है।

कौशल-विकास एक संस्कारगत अभ्यास है, जिसे केवल बौद्धिक स्तर पर सूचनाओं के आदान-प्रदान से संपन्न नहीं किया जा सकता। कौशलों और योग्यताओं अथवा स्वाभाविक गुणों के इस प्रकार के संस्कारगत अभ्यास को गीता में स्वाभाविक कर्म अथवा सहज कर्म के नाम से भी कहा गया है।

कौशलों का यह संस्कारगत अभ्यास जहाँ व्यक्तिगत रूप से होना संभव है, वहीं व्यापक स्तर पर यह



पारिवारिक और आनुवंशिक रूप में भी देखा गया है। जब किसी परिवार अथवा वंश-परंपरा के अधिकांश या कुछ लोग किसी एक विशेष प्रकार के व्यवसाय का निरंतर अभ्यास करते हैं, तब वह दीर्घकालिक अभ्यास और संस्कार एक महत्वपूर्ण कौशल और श्रेष्ठ योग्यता के रूप में विकसित हो जाता है।

फलतः वह सामुदायिक प्रतिष्ठा और पहचान का कारण बनने के साथ-साथ राष्ट्र की उन्नति में भी योगदान देता है। वस्त्रकार, मूर्तिकार, चर्मकार, लौहकार, यहाँ तक कि आधुनिक युग में संगीत के पारिवारिक घराने – ये सब जातियों का रूप न होकर एक विशेष प्रकार के कौशल की सामुदायिक पहचान के परिचायक हैं।

इनमें से किसी भी प्रकार के कौशल-आधारित समुदाय की अनुपस्थिति में राष्ट्र की आर्थिक और व्यावसायिक गतिविधियाँ अवरुद्ध हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में आजीविका के अवसरों को और अधिक बढ़ाने के लिए सरकारी नौकरियों और आरक्षण के दबाव से बहुत सीमा तक मुक्त होते हुए, दीर्घकालिक संस्कार और अभ्यास पर आधारित सामुदायिक कौशलों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाए और उन्हें विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाए, तो इसके अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

पूर्वाभ्यास पर आधारित कौशलों के विकास और निरंतर प्रोत्साहन के लिए प्रशिक्षण, तकनीक तथा आवश्यक अनुदान आदि समय-समय पर प्रदान किए जाने से रोजगार की प्राप्ति के लिए नगरों की ओर होने वाले पलायन की समस्या को भी रोका जा सकता है। सरकारी अथवा निजी संस्थाओं में एक विशेष प्रकार की नौकरी अथवा सेवा के लिए लगने वाली भीड़, प्रतीक्षा और पीड़ा को भी बहुत सीमा तक कम किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए किन्नर समाज तथा नटनर्तक समाज मुख्य रूप से कलाओं के व्यवसाय से जुड़ा रहा है यदि उन्हें उचित सम्मान, प्रशिक्षण और समुचित आय देकर प्रोत्साहित किया जाए, तो भारत की प्राचीन धरोहर – नृत्य, संगीत आदि कलाओं – का संरक्षण और हस्तांतरण भी संभव हो सकता है तथा इस समाज को भिक्षावृत्ति से भी मुक्त करवाया जा सकता है।

इसी प्रकार आदिवासी और बंजारा समाज को वन-संरक्षण तथा जीव-जंतुओं की दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण और विकास से संबंधित परियोजनाओं में स्वाभाविक रूप से रोजगार देकर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

वर्तमान समय में ताजमहल के निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले आगरा के पेठा व्यापारियों पर जो आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ है, वह उनकी परंपरा-आधारित कौशल से संबंधित रोजगार के नष्ट हो जाने का ही दुष्परिणाम है।



यदि गीता में प्रतिपादित स्वाभाविक कर्म पर आधारित कौशल-विकास की अवधारणा को ठीक प्रकार से समझ लिया जाए और उसका सामुदायिक स्तर पर तकनीकी जागरूकता तथा प्रोत्साहन की प्रविधियों के माध्यम से अनुपालन कराया जाए, तो बहुत सीमा तक स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं और समाज तथा राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं पर भी नियंत्रण पाया जा सकता है।

लोक-कल्याण पर आधारित आर्थिक मूल्यों की स्थापना:

भगवद्गीता उन सभी आर्थिक मूल्यों का संवर्धन करती है जिनका संबंध लोक-संग्रह अथवा लोक-हित से जुड़ा हुआ है और जिनकी आधुनिक युग में भी विशेष प्रासंगिकता है। शिक्षा और स्वास्थ्य की प्राप्ति के साथ-साथ सुखमय जीवन जीने की जिन प्रविधियों का संकेत भगवद्गीता में मिलता है, वे भारतीय ज्ञान-परंपरा से पोषित हैं।

भगवद्गीता में विद्या अथवा शिक्षा को एक प्रमुख जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसे आधुनिक युग में आर्थिक और व्यावसायिक मूल्य के रूप में भी देखा जाने लगा है। गीता के विभिन्न संदर्भों में ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान की भी चर्चा और प्रशंसा हुई है। यहाँ ज्ञान और विद्या के समान अन्य किसी वस्तु को श्रेष्ठ नहीं माना गया है।

“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।”²⁹

इसी प्रकार ज्ञान और विद्या को सब प्रकार की बाधाओं और चुनौतियों के नाशक के रूप में भी स्थापित किया गया है –

“ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते।”³⁰

शिक्षा को सुव्यवस्थित रूप से संचालित और प्रचारित करते रहने के लिए गुरु, शिक्षक, शास्त्र तथा अनुशासन के महत्त्व की स्थापना भी गीता में प्राप्त होती है।³¹

“तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।”³²

स्वास्थ्य और जीवनशैली:

भगवद्गीता में उत्तम स्वास्थ्य और संतुलित जीवनशैली को भी महत्त्वपूर्ण आर्थिक मूल्य के रूप में माना गया है। उचित आहार-विहार और दिनचर्या द्वारा निर्मित संतुलित जीवनशैली से मनुष्य का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।



जब व्यक्ति और समाज शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं, तभी वे अर्थोपार्जन और आर्थिक समृद्धि की कुशलता प्राप्त कर सकते हैं।

“युक्ताहारविहारस्य योगो भवति दुःखहा।”³³

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जिस समाज और राष्ट्र का अधिकांश धन रोगों के उपचार और दुर्यसनों के नियंत्रण में व्यय होता है, वह आर्थिक रूप से अक्षम अथवा विकासशील राष्ट्र की संज्ञा प्राप्त करता है। यहाँ दुर्यसनों में मद्यपान तथा अन्य प्रकार के नशे सम्मिलित किए जा सकते हैं।

लोकहित और संसाधनों का संतुलित वितरण:

यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि गीता में प्रतिपादित आर्थिक मूल्य केवल धन अथवा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर केंद्रित नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आय और संसाधनों के व्यक्तिगत हित में अत्यधिक संचय के स्थान पर लोकहित में संसाधनों के संतुलित वितरण को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया गया है।

भगवद्गीता में आध्यात्मिक दृष्टि से जिन ब्रह्मज्ञानियों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, उन्हीं को यह भी निर्देश दिया गया है कि उनके द्वारा लोकसंग्रह के लिए यज्ञ, दान और तप जैसे कर्मों का निरंतर संचालन भी किया जाना चाहिए, जिससे समाज का आर्थिक और भौतिक विकास अवरुद्ध न हो।

“यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।”³⁴

गीता में उन लोगों की निंदा की गई है जो अन्न आदि पदार्थों का उपयोग केवल अपने लिए करते हैं, जबकि उनकी प्रशंसा की गई है जो अन्न को लोककल्याण के लिए समर्पित करके उसका उपयोग करते हैं—

“भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।”³⁵

सात्त्विक सुख और आत्मसंतोष:

भगवद्गीता में आत्मसंतोष और सात्त्विक सुख की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, वह व्यावहारिक और आर्थिक दृष्टि से भी संपूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण है। आत्मिक सुख और संतोष पर आधारित जीवनशैली प्रत्येक व्यक्ति और समाज को लोभ लालच और आपराधिक मानसिकता से मुक्त रखती है और व्यक्ति तथा समाज के मध्य उधार लेकर भी घी पीने के दुर्यसन से दूर रखने में सहायक हो सकती है। वर्तमान



समाज में पारिवारिक संबंधों और मूल्यों का हनन लूटपाट हत्या भ्रष्टाचार, उत्कोचहरण (रिश्वतखोरी) इत्यादि के भीषण दुष्प्रभाव से अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए आत्मिक सुख और संतोष पर आधारित जीवनशैली को अपनाना आवश्यक है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥³⁶

आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था :

गीता में भारतीय परंपरा के अनुसार कृषि, वाणिज्य, पशुपालन एवं लघु उद्योगों पर आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को अधिक कल्याणकारक और राष्ट्रोपयोगी माना गया है। विदेशी प्रभाव और पराधीन आर्थिक संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्थाएँ आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आर्थिक दबाव, अत्यधिक ऋण के बोझ तथा युद्ध आदि संकटों के कारण तेल खनिज आदि संसाधनों की न्यूनता का सामना कर रही है। इन सभी संकटों से मुक्त रहने के लिए भगवद्गीता व्यक्ति और समाज को स्वयं अपने संसाधनों के आधार पर ही अपना आर्थिक हित प्राप्त करने की प्रेरणा देती है।

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥³⁷

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हुए भी श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आर्थिक मूल्यों को सुनिश्चित करने वाली व्यवस्था के अनुरूप संदेश और अभिप्रेरणाएँ प्रस्तुत करती है।

पादटिप्पणिया :

1. महाभारतम्, वनपर्व, 313.117 –

“धर्मं अर्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥”

2. स्वरचितः श्लोकः (लेखकस्य स्वकीय रचना)



3. गीता-माहात्म्यम् –

“गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।”

4. गीता-माहात्म्यम् –

“सर्वोपनिषदो गावो...”

5. श्रीमद्भगवद्गीता 2.5
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2.8
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2.38
8. श्रीमद्भगवद्गीता 8.1-4
9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 11 (विश्वरूपदर्शनयोग)
10. श्रीमद्भगवद्गीता 10.20
11. श्रीमद्भगवद्गीता 10.25
12. श्रीमद्भगवद्गीता 10.31
13. श्रीमद्भगवद्गीता 7.4
14. श्रीमद्भगवद्गीता 9.22
15. श्रीमद्भगवद्गीता 3.37
16. श्रीमद्भगवद्गीता 3.40
17. श्रीमद्भगवद्गीता 3.41
18. श्रीमद्भगवद्गीता 3.42
19. श्रीमद्भगवद्गीता 3.43
20. श्रीमद्भगवद्गीता 4.33
21. श्रीमद्भगवद्गीता 18.41-44
22. श्रीमद्भगवद्गीता 4.13
23. महाभारतम्, शान्तिपर्व, 188.8 –

“न विशेषोऽस्ति वर्णानाम्...”



24. श्रीमद्भगवद्गीता 5.18
25. श्रीमद्भगवद्गीता 18.46
26. कार्ल मार्क्स, दास कैपिटल
27. श्रीमद्भगवद्गीता 2.47
28. श्रीमद्भगवद्गीता 3.21
29. श्रीमद्भगवद्गीता 4.38
30. श्रीमद्भगवद्गीता 4.37
31. श्रीमद्भगवद्गीता 4.34
32. श्रीमद्भगवद्गीता 16.24
33. श्रीमद्भगवद्गीता 6.17
34. श्रीमद्भगवद्गीता 18.5
35. श्रीमद्भगवद्गीता 3.13
36. श्रीमद्भगवद्गीता 2.62-64
37. श्रीमद्भगवद्गीता 6.5

संदर्भ-सूची :

(क) प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

- श्रीमद्भगवद्गीता। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2018।
- भगवद्गीता (व्याख्या)। सर्वपल्ली राधाकृष्णन। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011।
- श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्यम्। आदि शंकराचार्य। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015।
- गीता-माहात्म्यम् (पद्मपुराणान्तर्गत)। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2017।
- गीता-रहस्य। बाल गंगाधर तिलक। पुणे: केसरी प्रकाशन, 2014।

(ख) द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

- दास कैपिटल। कार्ल मार्क्स। नई दिल्ली: प्रगति प्रकाशन, 2010।
- भारतीय दर्शन। सर्वपल्ली राधाकृष्णन। नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स, 2012।
- भारतीय दर्शन का इतिहास। सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2013।
- उपनिषद्-साहित्य का अध्ययन। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2015।



- <https://www.thehindu.com/news/international/russian-scholars-come-out-in-support-of-bhagavad-gita-translation/article2950886.ece#> (टॉमस्क रिपोर्ट)
- कठोपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- ईशावास्योपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- मुण्डकोपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- महाभारतम् (वेदव्यासकृत)। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2016।

